भारत में शिक्षा व्यवस्था की समस्याएँ एवं समाधान

डॉ0 कल्पना यादव,

सह–आचार्य,
खुन खुन जी गर्ल्स पी0 जी0 कॉलेज, लखनऊ (उ0प्र0)

शिक्षा व्यक्ति के व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास का आधार हैं। देश की उन्नति और विकास की संवाहक और प्रत्येक महत्वाकांक्षी समाज की सर्वोच्च प्राथमिकता है। मानवता के सर्वोत्तम आदर्शों का स्तम्भ है। प्रसिद्ध उपन्यासकार सी0पी0 स्त्रों के अनुसार–''शिक्षा का मुख्य उद्देश्य मनुष्य की उस क्षमता को बढ़ाना है। जिससे उसमें हर समस्या के हल करने और हर चुनौती के साथ चलने की योग्यता पैदा हो सकें।'' प्रसिद्ध दार्शनिक और चिन्तक महर्षि अरविद के अनुसार – सच्ची और वास्तविक शिक्षा केवल वही है जो मानव की अन्तर्निहित समस्त शक्तियों को इस प्रकार विकसित करती है कि वह उनसे पूर्णरुपेण लाभान्वित होता है।''

शिक्षा किसी भी देश के विकास की बुनियाद होती है। किसी भी राष्ट्र की आधार शिला होती है। यह केवल अतीत युगों की उपलब्धियों तथा वर्तमान परिस्थितियों का संधि स्थल ही नहीं, ऐसा आलोक भी है जिसमें भविष्य की रुप रेखा निखरती है। शिक्षा संस्थानों से राष्ट्र के भावी कर्णधार तैयार होते है। वास्तव में शिक्षा अपने भौगोलिक परिवेश से रागात्मक लगाव भी पैदा करती है, और राष्ट्र के प्रति प्रबुद्ध चेतना का निर्माण करती है। जिस प्रकार शरीर में हृदय सब अंगों को स्वस्थ रक्त पहुँचाने का कार्य करता है, उसी प्रकार शिक्षा–समाज, शासन, विज्ञान, कला, साहित्य, प्रशासन, देश रक्षा सभी क्षेत्र संघातिक रुप से पीडित्रत हो उठते है। शिक्षा के इसी महत्व के कारण महान यूनानी दार्शनिक और राजनीतिक विचारक प्लूटो ने अपने ग्रन्थ ''रिपब्लिक'' में आदर्श राज्य की स्थापना के चार महत्वपूर्ण स्तम्भों में शिक्षा व्यवस्था को प्रमुख स्थान प्रदान किया है। शिक्षा के इसी महत्व के कारण दुनियॉ के सभी देश अपने सर्वांगीण विकास के लक्ष्य में शिक्षा और उसके संरचनात्मक ढाँचे को विशिष्ट दर्जा देते हैं।

जहाँ तक भारत का प्रश्न है, यहाँ प्राचीन काल से ही शिक्षा का विशेष महत्व रहा है। वैदिक काल में गुरुकुलों में उच्च शिक्षा प्रदान की जाती थी। इसके पश्चात बौद्ध काल आया और बौद्ध कालीन शिक्षा ने विश्वविद्यालयीन शिक्षा का भी श्री गणेश किया। इस काल में नालन्दा, तक्षशिला तथा विक्रमशिला विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई। इन विश्वविद्यालयों का पाठ्यक्रम वैदिककालीन उच्च शिक्षा के पाठ्यक्रम से कहीं अधिक व्यापक था। विश्वविद्यालयों में वैदिक संस्कृति और भ्रमण संस्कृति का जन्म हुआ। इन सभी ने त्याग के महत्व को स्थापित किया। मनुष्य कितना ही विज्ञ क्यों न हो किन्तु उसकी पहली कसौटी उसकी मनुष्यता है, हमारी शिक्षा इस मनुष्यता से भरपूर हो। सत्य के लिए आवाज उठाना और प्रिय से प्रिय वस्तु का त्याग करना भारतीय शिक्षा हमें सिखाती है। इसी रुप में ''पुरुषार्थ'' भारतीय शिक्षा का महत्वपूर्ण पोषक तत्व रहा है। शिक्षा की इसी पर्यावरणीय भूमि में विवेकानन्द, जगदीशचन्द्र बोस, आचार्य प्रफुल्लचन्द्र, शांतिस्वरुप भटनागर, सरोजनी नायडू, डॉ0 होमी जहाँगीर भाभा, राजा रमन्ना,

धनवंतरी, चरक, विक्रम साराभाई, ए0 एन0 खोसला, और डॉ0 ए0 पी0 जे0 अब्दुल कलाम जैसी प्रतिभाएँ उत्पन्न हुई है। हमारे उच्च शिक्षा के परिसर इन प्रतिभाओं की ऊर्जा से गतिमान हों, यही शिक्षा की सार्थकता है। शिक्षा अनिवार्यतया सृजनात्मक होती है। शिक्षा के माध्यम से उद्भूत विचार, प्रतीत अथवा बिम्ब संस्कृति को विवर्त करते हैं। वह समाज की श्रेष्ठ अभिव्यक्ति होती है। शिक्षा हमारी मनुष्यगत आवश्यकता की पूर्ति करती है जो सार्वजनिक और सर्वकालिक है। मानवता के विकास का इतिहास शिक्षा के विकास का ही इतिहास है। शिक्षा के द्वारा ही विकास की अभिव्यक्ति विविध साधनों के रुप में प्रतिफलित होकर मानवीय धरातल पर नवीन शैलियों तथा नवीन सत्यों की सृष्टि कर सकी है। शिक्षा का लक्ष्य व्यष्टि और समष्टि दोनों को सामंजस्य सूत्रों में बाँधकर सम्पूर्णता देना है तथा शिक्षा हृदय और बुद्धि के परिष्कार और समन्वय द्वारा मानव को लक्ष्य तक पहुँचाने की क्षमता प्रदान करती है। प्रसिद्ध दार्शनिक शिक्षा शास्त्री डॉ0 राधाकृष्णन के अनुसार–''यदि कोई शिक्षा शाश्वत मूल्यों को, शिष्टाचार को समझने में असफल रही है तो वह सही शिक्षा नहीं है।''

लेकिन आज के भूमण्डली करण और वैश्वीकरण के इस दौर में शिक्षा के क्षेत्र में चौतरफा चुनौतियाँ पैदा हो रही है, एक तरफ बेरोजगार बढ़ रही है तो दूसरी तरफ नैतिक मूल्यों का निरंतर ह्रास हो रहा है। वास्तव में आज शिक्षा का क्षेत्र ज्ञान की दोहरी और रहस्यमयी प्रयोग शाला बन गया है। उसे व्यक्ति के अन्तर्जगत को सम्पूर्ण तथा मुक्त विकास भी देना पड़ता है और उसे समष्टि के सामंजस्यपूर्ण बंधन में बाँधना भी पड़ता है। शिक्षा को मनुष्य की मूलभूत प्रवृत्तियों का परिष्कार और दिशा दर्शन करना पड़ता है। मनुष्य के बहिर्जगत की समस्याएँ भी सुलझानी पड़ती है। परमार्थकारी शिक्षा से मानव की मानसिक प्रवृत्तियों के उदात्तीकरण का बोध होता है और अर्थकारी शिक्षा उसे लौकिक दृष्टि से जीवन यापन के लिए उपयुक्त और संतुलित विकास देती है। लेकिन वर्तमान समय में दोनों ही क्षेत्रों में चुनौतियां व्याप्त है।

उपरोक्त परिप्रेक्ष्य में भारत का शैक्षणिक परिदृश्य और उसके समक्ष उपस्थिति प्रमुख चुनौतियों का विश्लेषण करना तथा उनके समाधान के उपाय खोजना प्रस्तुत आलेख का उद्देश्य है।

आजादी के पहले भारतीय समाज में शिक्षा का परम्परावादी रुप ही ज्यादा रहा है। राजाओं और जमीदारों के समय में शिक्षा का स्वरुप नियंत्रित था कुछ खास वर्ग के लोगों को ही शिक्षा दी जाती थी। अंग्रेजों के शासन काल और फिर आजादी के बाद भारत में आधुनिक शिक्षा का तेजी के साथ विस्तार हुआ।

भारत में उच्च शिक्षा के क्षेत्र में 1857 तक हिन्दू कॉलेज कलकत्ता, बनारस संस्कृत कॉलेज, पचयप्पा क्रिश्चियन कॉलेज मद्रास और आगरा कॉलेज स्थापित हुए, इस काल में व्यावसायिक कॉलेज, रुड़की इंजीनियर कॉलेज, कलकत्ता मेडिकल कॉलेज, बंबई इंजीनियर कॉलेज स्थापित हुए। स्वतंत्र भारत में राधाकृष्णन आयोग, कोठारी आयोग आदि ने उच्च शिक्षा में गुणवत्ता संवर्धन का प्रयास किया। सार्जेण्ट रिपोर्ट के आधार पर विश्व विद्यालय अनुदान समिति तथा राधाकृष्णनन आयोग के सुझाव पर विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की स्थापना की गई।

उच्च शिक्षा के क्षेत्र में स्वतंत्रता प्राप्ति से लेकर अब तक संख्यात्मक दृष्टि से आशातीत वृद्धि हुई है विश्वविद्यालय की संख्या 20 बढ़कर 430, महाविद्यालयों की संख्या 500 से बढ़कर 20,677 और शिक्षकों की संख्या 15000 से 5.05 लाख तक पहुँच गई है। साथ ही छात्रों की संख्या 1950 में जहाँ केवल 1 लाख थी, अब

बढ़कर 118.12 लाख तक पहुॅच चुकी है। जिसमें लड़कियों की संख्या 47.09 लाख है। इस प्रकार उच्च शिक्षा में कुल नांमाकन जो वर्ष 1950 में 01 प्रतिशत था। वर्ष 2010–11 तक लगभग 13.5 प्रतिशत तक पहुॅच चुका है। उपरोक्त आकड़े बताते हैं कि देश में विज्ञान, तकनीकी, चिकित्सा, प्रबंधन, कला, संगीत, दर्शन, इंजीनिरिंग के क्षेत्र में शिक्षा का तेजी के साथ विकास हुआ है। ज्ञान आधारित समाज की स्थापना में देश ने विगत दो दशककों में अच्छी उपलब्धियाँ हासिल की हैं। इंजीनियरों, चिकित्सकों, प्रबंधकों, ने अपने ज्ञान और कौशल का अभिनव एवं उच्च स्तरीय प्रदर्शन किया है। तकनीकी शिक्षा के क्षेत्र में भारत की प्रगति संतोष जनक है अभी हाल ही में (13 अक्टूबर 2011) इसरो द्वारा श्री हरिकोटा के पी0एस0एल0वी0सी0 18 से तीन नैनो सेटेलाइट सफलता पूर्वक अंतरिक्ष में भेजे गए हैं। इनमें से सबसे छोटा जुगनू विश्व का सबसे कम वजन वाला उपग्रह है। इस उपग्रह को आई0 आई0 टी0 कानपुर के छात्रों न बनाया था। साथ ही देश के कई शिक्षण संस्थानों से निकल ने वाले छात्र दुनिया में भारत का नाम रोशन कर रहे हैं, सरकार भी शिक्षा के समग्र विकास के लिए प्रतिबद्ध है। इतना ही नहीं भारत के वर्तमान प्रधानमंत्री ने 11वीं पंचवर्षीय योजना को भारत की राष्ट्रीय शिक्षण योजना के तौर पर निरुपति करते हुए, चार लक्ष्यों–समावेषण के साथ विस्तार, गुणवत्ता और प्रासांगिक शिक्षा, शैक्षणिक व प्रशासनिक सुधार और समावेशी शिक्षा पर ध्यान केन्द्रित कर विकास की बात कही है, साथ ही लगभग 84943 करोड़ रुपए का बजट भी इस योजना में शिक्षा के लिये तय किया गया है। इसमें संदेह नहीं कि इन प्रयासों द्वारा शिक्षा के विस्तार से आर्थिक विकास होगा और समवेशीकरण के जरिए उच्च शिक्षा तक अधिक से अधिक लोगों की पहुॅच बढ़ेगी।

लेकिन तस्वीर का दूसरा पहलू भी सामने हैः– आजादी के बाद शिक्षण संस्थाओं की संख्या तो बढ़ी हैं लेकिन इन संस्थानों में गुणवत्ता का विकास नही हो पाया है। 07 आई0 आई0 टी0 और 05 आई0 आई0 एम0 संस्थानों और उगलियों में गिने जाने वाले कुछ विश्वविद्यालयों को छोड़ दे ंतो हर जगह उच्च शिक्षा का गुणात्मक विकास महज खानापूर्ति में चल रहा है। पूरी दुनिया के 500 विश्वविद्यालयों में भारत के 03 विश्वविद्यालय ही गुणवत्ता पर खरे उतरते हैं। वैश्विकस्तर पर अमेरिका के 168, ब्रिटेन के 40, जर्मनी के 40, जापान के 34 विश्वविद्यालयों में भारत की रैकिंग शून्य है। जबकि अमेरिका के 53, ब्रिटेन के 11, जर्मनी और जापान के 5–5 विश्वविद्यालय टाप 100 की रैकिंग में अपना स्थान बनाते है। स्पष्ट है कि वैश्विक स्तर पर प्रतिस्पर्धात्मक दृष्टि से भारत का शैक्षणिक परिदृश्य संतोष जनक नहीं है। विकसित देशों में उच्च शिक्षा के विकास संवर्धन और गतिशीलता के लिए निरन्तर अनुसंधान होते है। आवश्यकता के अनुरुप नीतियाँ बनती हैं, और उनका अक्षरशः पालन होता है। लेकिन हमारे देश में नीतियाँ वे बनाते हैं, जिन्हें न तो उच्च शिक्षा से कोई वास्ता है और न ही समस्याओं और चुनौतियों को सुलझाने में ही कोई रुचि है।

उच्च शिक्षा के विकास में शासकीय संस्थानों की स्थिति तो और भी अधिक दयनीय है, क्योंकि सरकारी तन्त्र में शिथिलता, नक्कारापन और गैर जिम्मेदारी का वर्चस्व है। शिक्षण संस्थाओं पर राजनीति, गुटबाजी, भाई भतीजा वाद और नौकरशाही हावी हो रही है। नीतियों के निर्माण से लेकर व्यवहारिक क्रियान्वय तक के बीच में दूरदर्शितपूर्ण निर्णय व क्रियान्वयन में ईमानदारी व समन्वयपूर्ण कार्यशैली का अभाव सबसे बड़ा कारण है। दूसरी तरफ शिक्षण संस्थानों में बढ़ रही अराजकता, अनुशासन हीनता व पठन पाठन के प्रति उदासीनता तथा भ्रष्टाचार के नए नए रुप एक बड़ी चुनौती है। हमारे देश में शिक्षा के समझ प्रमुख चुनौतियाँ इस प्रकार है :–

1. भारत में दी जा रही शिक्षा इस स्तर की नहीं है कि वह वैश्वी कृत दुनिया के माँगों के अनुरुप छात्रों को तैयार कर सकें।
2. देश में उच्च शिक्षा सहित समूची शिक्षा, शैक्षिक स्तर, फैकल्टी और मूलभूत सुविधाओं को लेकर सवालों के घेरे में है।
3. गुणवत्ता को बढ़ाने, पाठ्यक्रम को योजनाबद्ध और तत्कालीन परिस्थितियों के अनुरुप करने के गम्भीर प्रयास की कमी है।
4. शिक्षा के विस्तार के अनुपात में मूल सुविधाओं की व्यवस्था नहीं हो सकी है।
5. प्राथमिक तथा माध्यमिक शिक्षा प्रदान करने वाला शिक्षण संस्थाओं में आधार भूत सुविधाओं का अभाव है। (सर्वोच्च न्यायालय को मई 2011 को उपलब्ध कराई गई जानकारी के अनुसार म0प्र0 महाराष्ट्र, उ0 प्र0 सहित लगभग 15 राज्यों में 5 लाख 66 हजार 221 स्कूलों में अध्ययन करने वाले छात्र–छात्राओं को आधारभूत सुविधाएँत क उपलब्ध नहीं है। जहाँ तक बच्चों की योग्यता के स्तर की बात है वह सर्वाधिक चिंतनीय है। ''अभी हाल ही में एस0 ई0 आर0 के 30 हजार ग्रामीण बच्चों पर किए गए अध्ययन रिपोर्ट में कहा गया है कि बच्चों द्वारा अपने स्तर पर सही तरीके से वाक्य रचना करने की क्षमता जहाँ तेजी से कम हो रही है वहीं कक्षा चार में पढ़ने वाले बच्चों का बड़ा हिस्सा बुनियादी गुणा–भाग में भी समस्या का सामना कर रहा है।'' निश्चय ही यह स्थिति चिन्ताजनक है।)
6. शिक्षण संस्थानों में प्रशिक्षित और समर्पित शिक्षकों की कमी है।
7. शिक्षा से सामाजिक तनाव, पारिवारिक विघटन और बच्चों में डिप्रेशन बढ़ा है। चारों तरफ अनुशासनहीनता और अपराधीकरण का वर्चस्व बढ़ रहा है।
8. नौकर शाही और राजनीति का वर्चस्व निरन्तर बढ़ रहा है।
9. संवर्ग लोगों के मध्य प्रतियोगिता में समग्र समानता के लिए अयोग्यों को आगे बढ़ाना भी भविष्य के लिए घातक है।
10. अनिवार्य और निःशुल्क शिक्षा अधिनियम 2009 के प्रावधान (कोई परीक्षा नहीं, अनुत्तीर्ण नहीं) स्तरीय ज्ञान, तार्किकता, विश्लेषणात्मक बुद्धि के विकास में सहायक न होकर और अधिक बाधक होंगे।
11. ट्यूशन समानान्तर शिक्षा व्यवस्था का रुप ले चुका है।
12. शिक्षण संस्थानों में परीक्षाओं में व्यापक नकल भी एक गम्भीर चुनौती है जो शिक्षा के स्तर को खोखला कर रही है। (यह गम्भीर बीमारी है और हमारे राजनेता जो देश के कर्णधार है वे भी इसमें निर्णायक भूमिका निभाते है। कई नेताओं के स्वयं के बच्चों, नजदीकी रिश्तेदारों को फर्जी तरीके से लाभ पहुँचाना भारत में आम चलन है, लेकिन अभी हाल ही में पाण्डूचेरी के शिक्षामंत्री ने दसवीं कक्षा की पूरक परीक्षा में स्वयं के स्थान पर दूसरे व्यक्ति को परीक्षा देने के लिए बैठाया था।)

निश्चय ही ये परिस्थितियाँ और परिदृश्य शुभ संकेत नहीं कहे जा सकते हैं। देश में शैक्षणिक परिदृश्य के दोनों पहलुओं का विश्लेषण करने पर स्पष्ट है कि शैक्षणिक क्षेत्र में गम्भीर चुनौतियाँ है, समस्याएँ है लेकिन ये लाइलाज नही है – वास्तव में उच्च शिक्षा के क्षेत्र में जो भी समस्याएँ हैं, उनके निदान के लिए गम्भीर प्रयास की जरुरत है। शिक्षक, शिक्षार्थी, शैक्षणिक संरचना और शैक्षणिक परिवेश ये चार प्रमुख घटकों को लेकर सकारात्मक प्रयास करने की आवश्यकता है।

इसके लिए सबसे प्रथम तो शिक्षा सुधार के लिये गठित कोठारी कमीशन के अध्यक्ष श्री दौलत सिंह कोठरी के कथन पर गौर कर अमल करना होगा उन्होंने कहा था कि –''देश के बुद्धिजीवियों के सम्मुख एक विकट समस्या है कि उनकी सोच का केन्द्र यूरोप है, इस केन्द्र को भारत में स्थिति करना होगा तभी अच्छी शिक्षा और देश का समग्र विकास संभव है। क्योंकि अंग्रेजों के शासन काल में तो जैसा कि जान ग्रान्ट और लार्ड मैकाले के कथन से ही स्पष्ट होता है कि उनका उद्देश्य केवल स्वयं की स्वार्थ सिद्धी था। (1853 में ब्रिटिश पार्लियामेनट को संबोधित करते हुए जॉन ग्रॉट ने कहा था – कि भारत में 5 लाख स्कूल थे जिन्हे हम ने समाप्त कर दिया। लॉर्ड मैकाले ने अपने एक वक्तव्य में कहा था कि – मैं जो शिक्षा दूगां उसमें विद्यार्थियों की चमड़ी और खून तो भारतीय होगा, लेकिन उनकी बुद्धि, आत्मा, उनका विचार और उनकी नैतिकता हमारी होगी) ऐसे में भारतीय शिक्षा व्यवस्था में सुधार के लिए वैश्विक परिस्थितियों और वर्तमान परिदृश्य के अनुरुप शिक्षाविदों और मनीषियों को चिन्तन, मनन कर शैक्षणिक येाजना तैयार करनी होगी। इसके साथ ही कुछ और उपाय अपनाये जा सकते हैं।

1. बुनियादी स्तर पर सुधार के द्वारा ही सम्पूर्ण शैक्षणिक परिदृश्य को सुधारा जा सकता है। इसके लिए प्राथमिक शिक्षा की जरुरतों को समझना होगा तथा प्राथमिक शिक्षा को स्तरीय और विश्वसनीय बनाना होगा।
2. छात्रों को प्रति माता पिता व शिक्षकों को अपनी जिम्मेदारी निभाने में ईमानदारी बरतनी होगी।
3. शिक्षा के पाठ्यक्रम को वर्तमान समय की आवश्यकता के साथ–साथ सामाजिकता के भी अनुरुप करना होगा।
4. अकादमिक और प्रशासनिक सुधारों को सम्पूर्ण शिक्षा व्यवस्था में अपनाना होगा, इसके लिये निम्न उपाय किये जा सकते हैं।
    1. इसके लिए प्रवेश परीक्षा व सभी परीक्षाओं की प्राविधियों में परिवर्तन।
    2. अकादमिक सुधारों में आन्तरिक मूल्यांकन पर विशेष ध्यान।
    3. सेमेस्टर सिस्टम एवं ग्रेड सिस्टम को पूर्णतः मान्यता।
    4. सेमिनार परियोजना कार्य व इकाई परीक्षाओं के द्वारा छात्रों का सतत् निष्पक्ष मूल्यांकन।
    5. शिक्षकों की प्रशिक्षण एवं परीक्षा के बाद नियुक्ति।
    6. समय–समय पर शिक्षकों के पुनः प्रशिक्षण की व्यवस्था।
5. मूल्य आधारित शैक्षणिक पाठ्यक्रम की भी महती आवश्यकता है इसके लिए सत्य धर्म, प्रेम सहयोग और अहिंसा जैसे बुनियादी मूल्यों को अध्ययन अध्यापन में स्थान मिले इसकी व्यवस्था होनी चाहिए। (सर्वोच्च न्यायालय ने भी 2002 में अरुणा राम एवं अन्य बनाम भारत सरकार मामले में निर्णय देते हुए स्वीकार किया था कि विगत पाँच दशकों में हर स्तर पर सामाजिक नैतिक और आध्यातिमक मूल्यों का निरन्तर ह्रास हुआ है और स्वार्थपरता में वृद्धि हुई है। सर्वोच्च न्यायालय ने इसके पुर्नस्थापना के लिए मूल्य आधारित शिक्षा पर बल दिया है।) स्वामी विवेकानन्द ने भी कहा था कि – हमें वह शिक्षा चाहिए जिससे चरित्र बनता है, मन की शक्ति बढ़ती है, प्रतिभा का विस्तार होता है और आदमी अपने पैरो पर खड़ा हो सकता है।
6. शिक्षा और समाज में तादात्मय स्थापित हो सके इसके लिए शिक्षको को अपने

गुरुतर दायित्वों के निर्वहन के लिए आत्मप्रेरित होकर तत्पर होना होगा।

आज विश्वविद्यालयों की कक्षाएँ पाठ सुनने के कमरे नही बने, छात्र जिज्ञासा, अन्वेषण अध्ययन से दूर रहकर तथ्यों और आकड़ों के उपभोक्ता न बने, प्राध्यापक आकड़ों के थोक विक्रेता के स्थान पर चिन्तक बने, सर्जक बने, तभी उच्च शिक्षा की सार्थकता है और तभी वह समाज के निर्माण और सर्वांगडीण विकास में सहायक बन सकती है।

निष्कर्षत कहा जा सकता है कि वैश्विक श्रेष्ठता के मानको के अनुरुप गुणात्मक परिवर्तन और सामाजिक तथा नैतिक मूल्यों से अनुप्रमाणित शैक्षणिक व्यवस्था तभी बन सकती है जब राजनैतिक, सामाजिक दृढ़ इच्छा शक्ति हो तथा नीति निर्माता और राजनेता देश के भविष्य के लिये यथार्थ के धरातल को ध्यान में रखकर नीति का निर्माण और उनका क्रियान्वयन करें। निश्चय ही शिक्षक शिक्षार्थी के साथ साथ शिक्षक विद्यालय छात्र व शिक्षा के प्रति सम्पूर्ण समाज द्वारा किया गया ईमानदार प्रयास ही शिक्षा के स्तर को व्यापक, स्तरीय, समयानुकूल व देशानुकूल बना सकता है। केवल उत्कृष्ता के बद टापू खड़े करने या योजनाओं के कागजी घोड़े दौड़ाने से शैक्षणिक परिदृश्य में बदलाव व उसकी चुनौतिया व समस्याओं का समाधान संभव नहीं है।

संदर्भ संकेत

1. शर्मा, सुभाष भारत में शिक्षा व्यवस्था : अवधारणाएँ, समस्याएँ एवं संभावनाएँ।
2. अग्रवाल जे0एस0 – आधुनिक शिक्षा के स्रोत, वाणी प्रकाशन दरियागंज, नई दिल्ली– 2007
3. आचार्य नरेन्द्र देव–लेख–''शिक्षा में गुणात्मक सुधार'' ''विचार'' म0प्र0 शासन उच्च शिक्षा विभाग, 2008।
4. गुप्ता, पवन कुमार (सम्पादक) शिक्षा, सभ्यता और आधुनिकता, वाणी प्रकाशन दरियागंज, नई दिल्ली – 2008।
5. महर्षि अरविन्द ' आई डियल ऑफ ह्यूमिनिटी–ह्यूमनसाइकिल, हिन्दी प्रकाशन, अरविन्द आश्रम पांडचेरी, 1937।
6. शर्मा, एस0 के0 शिक्षा दर्शन, डिस्कवरी पब्लिकेशन हाउस, नई दिल्ली, 2006।
7. रचना पत्रिका, म0प्र0 हिन्दी ग्रन्थ अकादमी भोपाल, सित0 अक्टू0 2011।
8. दैनिक भास्कर, सतना, 19 जून 2012।
9- Chahan, S.S. : innovations in teaching, learning process. Vikash Publishing House Pvt. Ltd., New Delhi 1998

Copyright © 2017 *Dr. Kalpna Yadav*. This is an open access refereed article distributed under the Creative Common Attribution License which permits unrestricted use, distribution and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.